शून्य की अनंत महत्ता

विश्व मोहन तिवारी

हम ज्ञान युग में रहते हैं, मेरे विचार से यह एक मिथ है। हां हमारे आज के अज्ञान के समुद्र में ज्ञान या ज्ञानियों के कुछ टापू हैं (द्वीप तो बड़े होते हैं)। इसका आभास मुझे *साइंटिफिक अमेरिकन* जैसी विज्ञान की लोकप्रिय पत्रिका के 21 अगस्त 2009 के अंक में जॉन मैस्टन का एक लेख (*द ओरिजिन आफ ज़ीरो*) पढ़कर, विशेषकर उस पर विद्वान पाठकों की टिप्पणियां पढ़कर हुआ। वह लेख, लगता है कि दो पुस्तकों (चार्ल्स सैफ की '*ज़ीरोः दी बायोग्राफी ऑफ ए डेंजरस आइडिया*', वाइकिंग 2000; और रॉबर्ट केप्लान की '*दी नथिंग देट इज़ः नेचुरल हिस्ट्री ऑफ ज़ीरो*', ऑक्सफोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 2000) पर आधारित है, और संभवतः बहुत लघु आकार का होने के कारण उसमें जानकारी भी 'लघु' थी। किन्तु आश्चर्य की बात थी कि उसकी 32 टिप्पणियों में से मात्र एक ही तर्कसंगत कही जा सकती थी, जिसमें कुछ ज्ञानात्मक तथ्य थे। आशा है कि यह लेख पाठकों को इस विषय का तर्कसंगत तथा तथ्यात्मक ज्ञान देगा।

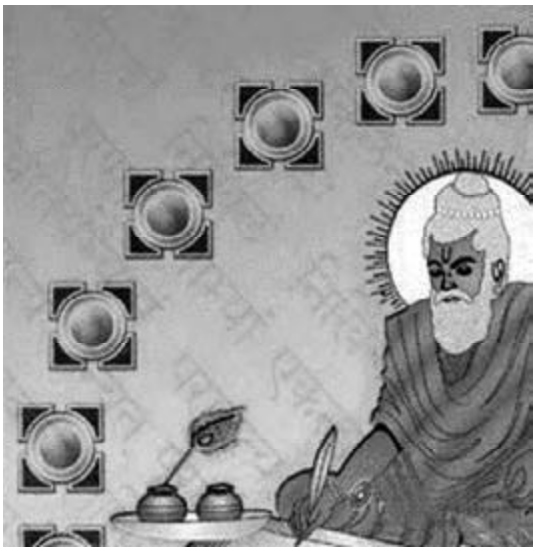

शून्य तथा स्थानमान का महत्त्व गणित के लिए उतना ही है जितना हमारे जीवन के लिए हवा का, और शायद इसलिए हम हवा की तरह शून्य तथा स्थानमान का महत्त्व नहीं समझते हैं। शून्य एक अवधारणा भी है और एक अंक भी। दोनों का अलग-अलग महत्त्व है। भारत में शून्य के लिए शून्य शब्द के अतिरिक्त 'ख', 'आकाश' और 'बिन्दु' शब्दों का भी उपयोग किया गया है, और अक्षरों में तो कोई भी स्वर शून्य का द्योतक हो सकता था। यह कथन कि मेरे पास स्वर्ण मुद्राएं नहीं हैं, एक तथ्य का कथन है, और यह कथन कि मेरे पास शून्य मुद्राएं हैं, तथ्य का कथन होते हुए, शून्य की अवधारणा का भी द्योतक है। शून्य की अवधारणा 'शून्य अंक' से बहुत पुरानी है, इतनी कि यह इतिहास के गर्भ में छिप गई लगती है।

ऋग्वेद के द्वितीय मंडल के ऋषि गृत्समद को शून्य की खोज का श्रेय दिया जाता है। प्रसिद्ध विद्वान सुभाष काक ने प्रमाणित किया है कि ऋग्वेद के दस मंडलों की ऋचाओं की दस अलग संख्याओं में हमारे पांच ग्रहों के नक्षत्र वर्षों तथा संयुति (पृथ्वी के सापेक्ष) वर्षों की जानकारी छिपी हुई है।

ईसा के लगभग डेढ़ हज़ार वर्ष पूर्व बैबीलोनियाई गणित में षाष्टिक (साठ पर आधारित) स्थानमान पद्धति थी, जो आज के समान स्पष्ट तो नहीं थी किन्तु थी स्थानमान पद्धति। किन्तु उसमें शून्य के चिन्ह का उपयोग नहीं था। उनके लिए 305 में और 35 में अंतर करने में कोई कठिनाई नहीं होती थी, क्योंकि वे मोटा अनुमान लगाकर अंतर समझ सकते थे। बाद में, स्थानमान में अंकों के बीच के अंतराल को खाली स्थान से दिखलाने लगे थे। लगभग 300 ईसा पूर्व उस खाली स्थान पर वे शून्य को एक चिन्ह से दर्शाने लगे थे, मगर तब भी उनकी गणितीय गणना में शून्य का कोई अस्तित्व नहीं था।

मध्य अमरीका की मय सभ्यता में भी शून्य का आविष्कार

हुआ, लगभग 350 ईस्वी में। मय के पास अनेक कैलैंडर थे, जिसके लिए उन्हें शून्य की आवश्यकता पड़ी थी। उनकी गणितीय गणना में भी शून्य का कोई अस्तित्व नहीं था।

यूनान में तो पहले इस पर दार्शनिक चर्चा अवश्य हुई थी - अरे भई, जो कुछ नहीं है वह कुछ भी कैसे हो सकता है! आर्किमिडीज़ (287-212 ईसा पूर्व) के समान प्रतिभाशाली विद्वान ने भी न तो शून्य की चर्चा की और न स्थानमान पद्धति को अपनाया। लंबे समय तक यूनानियों ने बैबिलोनियाई स्थानमान पद्धति को नहीं अपनाया। सन 130 ईस्वी के लगभग जाकर, प्रसिद्ध बैबीलोनियाई खगोलशास्त्री टालेमी ने षाष्टिक गणना पद्धति में यूनानी अक्षरीय अंकों में शून्य के लिए एक चिन्ह का उपयोग किया था जो एक लघु गोले पर एक शिरोरेखा के साथ था। किन्तु इसका स्वतंत्र उपयोग होते हुए भी इसका उपयोग आधा अधूरा था, और वह भी कुछ नाम मात्र के विद्वानों तक ही सीमित था। वास्तव में टालेमी ने उसे मुख्यतया वही खाली स्थान भरने वाला चिन्ह ही समझा था।

भारत में लगभग 200 (500?) ईसा पूर्व छंद शास्त्र के प्रणेता पिंगलाचार्य हुए हैं (चाणक्य के बाद) जिन्हें द्विअंकीय गणित का भी प्रणेता माना जाता है। उन्होंने छंद शास्त्र में लिखा है (डॉ. एन. गोपालकृष्णन इंडियन इंस्टिट्यूट ऑफ साइंस हैरिटैज www. iish.org): 'गायत्री षड्सन्ख्यामर्धे अपनीते द्वयंके अवसिष्टत्रयस्थेषु रूपमपनीय द्वयंकाधः शून्यंस्थापयम्।' इसका अर्थ है, गायत्री छंद में एक पद में 6 अक्षर होते हैं; जब इस अंक 6 का आधा किया जाता है तब 3 बचता है; इस 3 में से 1 निकाल देने पर और उसका आधा करने पर 1 बचता है; इसमें से 1 निकालने पर शून्य की प्राप्ति होती है। न केवल इसमें शून्य की प्राप्ति हुई है वरन यह भी दिखाया गया है कि किसी संख्या में से उसी संख्या को घटाने से शून्य बचता है।

यहां शून्य की अवधारणा की परिभाषा-सी तो है ही, उसका गणितीय गणना में उपयोग भी है, जो इसके पूर्व किसी अन्य सभ्यता में नहीं मिलता है। अतः शून्य की खोज का श्रेय जो विद्वान आर्यभट को देते हैं, वह सही नहीं है, वरन उसे पिंगलाचार्य को मिलना चाहिए।

पिंगलाचार्य ने गणित में और भी आगे कार्य किया है, यद्यपि वह छंदों के नियम बनाने के लिए किया गया था। उनके छंदों के नियमों को यदि गणितीय दृष्टि से देखें तो एक तरह से वे द्विअंकीय (बाइनरी) गणित का कार्य करते हैं, और दूसरी दृष्टि से उनमें दो अंकों के घन समीकरण तथा चतुर्घाती समीकरण के हल दिखते हैं। गणित की इतनी ऊंची समझ के पहले अवश्य ही किसी ने उसकी प्राथमिक अवधारणा को भी समझा होगा। अतः भारत में शून्य की खोज ईसा से 200 वर्ष से भी पुरानी हो सकती है। यह खोज का विषय है। अधिकांशतः किसी अवधारणा की परिभाषा उसके उपयोग के बाद ही स्पष्ट की जाती है, जब तक कि वह कोई क्रान्तिकारी खोज न हो जैसे प्लांक द्वारा 'क्वाण्टम' की खोज।

सौभाग्य से गणित के एक बहुमूल्य ग्रंथ बख्शाली पाण्डुलिपि के कुछ (70) पन्ने सन 1881 में खैबर क्षेत्र में बख्शाली गांव के निकट मिले थे। ये भोज पत्र पर लिखे गए हैं, और बहुत ही जीर्ण अवस्था में हैं। इनकी कालगणना बहुत कठिन सिद्ध हुई है क्योंकि यह स्वयं मूल की प्रतिलिपि हैं।

इनकी भाषा के आधार पर अधिकांश विद्वान इन्हें 200 ईसा पूर्व से 300 ईस्वी का मानते हैं। यह ग्रंथ इसलिए भी महत्त्वपूर्ण है कि यह शुल्ब सूत्री (वैदिक) गणित के ईसा पूर्व 800 से लेकर ईसा पूर्व 500 के काल के बाद के गणितीय रूप से निष्क्रिय-से काल की पूर्ति-सी करता है। यह सिद्ध करता है कि आर्यभट अचानक ही एक धूमकेतु की तरह नहीं आ गए थे, वरन वे एक गणितीय परम्परा के अंग थे।

बख्शाली पाण्डुलिपि का वर्गमूल निकालने का बख्शाली सूत्र गणित की 'सन्निकटन विधि' दर्शाता है, जो एक महत्त्वपूर्ण विधि है जिसका आविष्कार भारत में स्वतंत्र रूप से हुआ था (चैन्नाबासप्पा, इंडियन जर्नल ऑफ हिस्ट्री एंड साइंस, 1976)। इस विधि में शून्य, ऋणात्मक संख्याओं आदि का उपयोग हुआ है, जो निश्चित ही शून्य की खोज को आर्यभट से लगभग 500 वर्ष पहले ले जाता है।

अधिकांश विद्वान आर्यभट प्रथम को शून्य तथा स्थानमान

की खोज का श्रेय देते हैं; संभवतः इसलिए कि 499 में उनकी खगोलिकी शोध पुस्तक आर्यभटीय में शून्य तथा स्थानमान का उपयोग है, जो एक प्रामाणिक पुस्तक है। इसमें आर्यभट दाशमिक स्थानमान की परिभाषा कर देते हैं- "स्थानम् स्थानम् दस गुणम्" (स्थान से अगले स्थान का मान दस गुणा)। किन्तु आर्यभटीय में तो खगोल के अतिरिक्त अंकगणित, बीजगणित, समतल त्रिकोणमिति, गोलीय त्रिकोणमिति भी हैं। उसमें वितत भिन्न, वर्ग समीकरण, घाट श्रेणी, साइन की तालिका आदि हैं। उन्होंने 'पाई' का काफी परिशुद्ध मान निकाला था। 'पाई' की खोज करने का भी श्रेय कुछ विद्वान उन्हें देते हैं।

यह दिखलाता है कि आर्यभट अंकों के उपयोग में नौसिखिया नहीं थे, और आर्यभटीय में ऐसा बहुत-सा ज्ञान है जो उनके पहले भी था, जैसे उन्होंने 'सूर्य सिद्धान्त' के ज्ञान को आगे बढ़ाया था। शून्य की खोज के साथ इतने ऊंचे ज्ञान विज्ञान पर शोध करना विकास की बहुत बड़ी छलांग की मांग करता है। बख्शाली पाण्डुलिपि के आधार के अतिरिक्त, इस दृष्टि से भी शून्य की खोज आर्यभट के बहुत पहले ही होना चाहिए।

वैसे, भारत में शून्य का (अंक सहित) सर्वप्रथम लिखित प्रमाण (बख्शाली पाण्डुलिपि के अतिरिक्त) ईस्वी सन 458 में एक जैन ग्रंथ लोकविभाग में मिलता है, और पाश्चात्य विद्वान इसे भी शून्य के खोज की पहली तिथि मानते हैं। गणित से इतर ग्रंथ में लिखित में आने के पहले इस अवधारणा का विकास पहले ही होना चाहिए। इससे भी यह अर्थ निकलता है कि शून्य का उपयोग 458 ईस्वी से बहुत पहले प्रारंभ हो गया था। कम से कम ईसा पूर्व 200 वर्ष वाले पिंगलाचार्य को तो निश्चित ही इसका श्रेय मिलता है।

भारत में जैन गणित का प्रमुख काल ईसा पूर्व 500 के बाद माना जा सकता है क्योंकि इस काल में वैदिक गणित का प्रभाव अपेक्षाकृत कम दिखता है। जैसे गणितीय ग्रंथों में 300 ई.पू. का भगवती सूत्र है जिसमें 'संयोजन' पर कार्य है, तथा 200 ई.पू. का स्थनंग सूत्र है जिसमें अंक सिद्धांत, रेखागणित, भिन्न, सरल समीकरण, घन समीकरण, चतुर्घाती समीकरण तथा क्रमचय (पर्मुटेशन्स) आदि पर कार्य हैं। सन 200 ईस्वी तक समुच्चय सिद्धांत का विकास मिलता है, और अनंत संख्या पर भी बहुत कार्य मिलता है। बाद में लॉगरिदम की अवधारणा की झलक दिखती है।

आर्यभट द्वारा गणित तथा खगोलिकी में एक लम्बी छलांग लगाने के कोई 129 वर्ष बाद, सन् 628 में प्रसिद्ध गणितज्ञ ब्रह्मगुप्त (598-670) ने शून्य के व्यवहार के गणितीय नियम वैज्ञानिक पद्धति में लिखे; यथा शून्य में से एक ऋणात्मक संख्या को घटाने से वही संख्या धनात्मक होकर बचती है। शून्य में किसी भी संख्या से भाग देने पर शून्य ही फल मिलता है। किन्तु वे किसी भी संख्या में शून्य का भाग देने से जो फल आता है उसे नहीं समझ पाए थे; वैसे इसे समझना दुष्कर भी है। 500 वर्षों से अधिक के बाद, भास्कराचार्य (1114-1185) ने इस शून्य द्वारा भाग देने का सही उत्तर दिया कि - उसका फल 'अनंत' है; और उन्होंने उसे समझाया भी था - अनन्त संख्या में से कुछ घटाने पर या कुछ जोड़ने पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता है, जिस तरह प्रलय में महाविष्णु में सब समा जाते हैं, और सृष्टि के समय उनकी उत्पत्ति होती है, महाविष्णु को कोई अंतर नहीं पड़ता। यह दर्शाता है कि शून्य की सही तथा पूरी समझ भारतीयों को बहुत पहले थी।

आज भी कुछ विद्वान भास्कराचार्य की अनंत की इस अवधारणा को सही नहीं मानते क्योंकि इसके उपयोग से तर्क द्वारा 1/0 = 2/0 = 3/0 =4/0, अर्थात 1=2=3=4, आदि सिद्ध किया जा सकता है जो कि गलत तर्क है। भास्कराचार्य का यह उत्तर सही है जो उनकी अद्वितीय प्रतिभा का प्रमाण है।

आठवीं सदी में अरबों ने फारस पर विजय प्राप्त की थी। शून्य, अन्य गणित की विधाएं तथा विज्ञान का

ज्ञान भारत से आठवीं सदी में फारस और अरब गया। उसके बाद अरबी विज्ञान का स्वर्णयुग प्रारंभ होता है। शून्य भारत से दक्षिण एशिया गया और फिर वहां से 718 में एक बौद्ध वैज्ञानिक के साथ चीन गया। बारहवीं सदी में इब्न एज़रा ने गणित पर तीन पुस्तकें लिखीं। इटालियन गणितज्ञ फिबोनाची के ज़रिए भारतीय अंक अरब से यूरोप में पहुंचे; इस कारण ये हिन्दू-अरबी अंक कहलाए, जो निश्चित ही गलत नामकरण है। स्वयं अरब में इन अंकों को हिन्दसा कहा जाता था! फिबोनाची यद्यपि महान गणितज्ञ माने जाते हैं किन्तु वे भी शून्य के गहरे अर्थ को नहीं समझ पाए थे क्योंकि वे शून्य को अन्य अंकों के समान अंक नहीं मानते थे। इसके बाद भी यूरोप में शून्य को प्रचलन में आने में लगभग 400 वर्ष और लगे थे। ज़िरोलामो कर्दानो (1501-1576) ने घन तथा चतुर्घाती समीकरणों के हल यूरोप में पहली बार निकाले थे। किन्तु उन्होंने शून्य का उपयोग नहीं किया था!

'*फ्राम वन टु ज़ीरोः युनिवर्सल हिस्टरी आफ नंबर्स*' में विश्व प्रसिद्ध फ्रांसीसी गणितज्ञ जार्ज इफ्रा निष्कर्ष देते हैं कि काफी संभावना है कि शून्य तथा स्थानमान पद्धतियां भारतीय सभ्यता की अद्वितीय उपलब्धियां हैं। प्रथम नौ अंकों का ब्राह्मी लिप्यंतरण स्वदेशी था, और उस पर कोई बाहरी प्रभाव नहीं पड़ा था, वह भारतीय सभ्यता की ही उपज था।

शून्य - जो कुछ नहीं है - उसका क्या महत्त्व? संभवतः इसलिए 1893 की विश्व धर्म सभा में स्वामी विवेकानंद को उनके भाषण के लिए 'शून्य' विषय दिया गया था। हमने देखा कि शून्य बहुत ही महत्त्वपूर्ण है, या दार्शनिक शब्दों में कहूं तो 'पूर्ण' है। अर्थात शून्य में बहुत कुछ है, जो दिखता नहीं है। क्या जो दिखता नहीं है उसका महत्त्व हो सकता है? वेदान्त तो कहता है कि जब हम शून्य होते हैं तब अनंत होते हैं! गौतम बुद्ध तो जीवन का लक्ष्य ही 'शून्यत्व' को मानते थे। दर्शन की बात तो छोड़ें, यह गणितीय लेख तो यही दर्शा रहा है, कि जो सचमुच में शून्य है, उसमें बहुत कुछ है, वह बहुत महत्त्वपूर्ण है। आखिर शून्य किसे कहेंगे, जो इतना छोटा हो कि उसे हम माप ही नहीं सकते, देख नहीं सकते, पांचों इंद्रियों से सूक्ष्मातिसूक्ष्म दर्शी की सहायता से भी नहीं देख सकते, जो प्लांक सीमा से छोटा हो, उसे ही तो विज्ञान शून्य कहता है, कहता था। अब वह विचार करने लगा है, भौतिकी के अधिकांश वैज्ञानिक यह मानते से लगते हैं कि जिसे हम शून्य समझ रहे थे, उसमें से प्रतिक्षण ऊर्जा विकिरित होती है और उसी में विलीन हो जाती है। वैसे भी महान विस्फोट का सिद्धान्त कहता है कि विस्फोट के पहले जब दिक्काल भी नहीं था, तब समस्त ब्रह्माण्ड एक सूक्ष्मातिसूक्ष्म रूप में था, और फिर उसका विस्फोट हुआ और इस सृष्टि का, दिक्काल का प्रसार प्रारंभ हो गया। उसी सूक्ष्मातिसूक्ष्म को हमारे उपनिषद (शब्दों की सीमा जानते हुए) गुहा कहते हैं। कठोपनिषद (20, द्वितीय वल्ली) में कहा गया है, 'अणोरणीयान्महतो महीयानात्मस्य जन्तो निहितो गुहायाम। तमक्रतुः पश्यति वीतशोको धातुः प्रसादान्महिमानमात्मनः।' अर्थात, आत्मा जो सूक्ष्मातिसूक्ष्म है और महातिमहा है, जो गुहा में रहता है, उसे जो जान लेता है वह आनंद में ही रहता है। आपको भी शून्य जान लेने पर आनंद प्राप्त हुआ होगा। ***(स्रोत फीचर्स)***

वर्ग पहेली 92 का हल

प्रा	कृ	ति	क		या	न		वि
	ष्ण		स			म		कि
	वि	का	र		न	क	सी	र
पा	व		त	क	ली			ण
	र			ठो			खे	
वि			च	र	स		स	खी
क	च	ना	र		म	दा	री	
र्ष		लं			त		दा	
ण		दा	द		ल	स	ल	सा